एक खंभा सभागृह

मालती शर्मा



बाल कहानियां

एक खंभा सभागृह

मालती शर्मा

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

भाद्र 1915 (सितम्बर 1993)

मूल्य : 16 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित

विक्रय केन्द्र • प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001, दूरभाष : 3313308
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038, दूरभाष : 2610081
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069 दूरभाष : 286696
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736, अन्नासलै, मद्रास-60002, दूरभाष : 867643
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004, दूरभाष : 653823
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001, दूरभाष : 68650
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019, दूरभाष : 245785
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500001, दूरभाष : 236393

नीलम आफसेट, 11/227 गीता कालोनी, दिल्ली-31

प्रकाशकीय

कहानियां बच्चों को सबसे अधिक आकर्षित करती हैं। यदि उनमें मनोरंजन के साथ-साथ कोई शिक्षा या प्रेरणा भी हो, तो उनकी सार्थकता और भी बढ़ जाती है।

किसी समय कहानियों में उपदेश अधिक होते थे। आज वह समय नहीं रह गया है। आज के वैज्ञानिक युग में बच्चों को सीधे-सीधे उपदेश पसंद नहीं है। विज्ञान और उससे जुड़ी अन्य जानकारियों ने उनके मानसिक स्तर को एक नया धरातल प्रदान किया है, किन्तु इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि बच्चों को सद्प्रवृत्तियों और स्वस्थ जीवन-मूल्यों की ओर प्रेरित किया जाए। मनोरंजन को शिक्षा और प्रेरणा से जोड़ने का एक उपाय प्रेरक और शिक्षाप्रद कहानियों को रोचक और मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करना भी है। ऐसी कहानियों को बच्चे आसानी से ग्रहण कर सकेंगे और लेखिका भी अपने उद्देश्य में सफल होगी।

प्रकाशन विभाग का सदैव यही प्रयास रहा है कि अपने बाल पाठकों को मनोरंजक और शिक्षाप्रद कहानियां उपलब्ध कराई जाए। इसी क्रम में ''बाल कहानियां'' श्रृंखला का प्रकाशन हो रहा है। ''एक खंभा सभागृह'' इसी श्रृंखला की एक कड़ी है। इसकी लेखिका हैं, मालती शर्मा।

आशा है, इन कहानियों से बच्चों का मनोरंजन होगा और साथ ही उन्हें स्वस्थ जीवन जीने की प्रेरणा मिलेगी।

विषय-सूची

एक खंभा सभागृह

■ हते हैं प्राचीन काल में एक स्थान पर एक राजा रहते थे । उन्हें ऊंचे-ऊंचे भव्य
व विशाल भवन, महल और सभागृह बनवाने का बड़ा शौक था । यद्यपि उनकी
ानी तरह-तरह के दर्शनीय भवनों से सजी थी, पर राजा को इतने से तृप्ति नहीं
वे अपने राज्य में अद्भुत स्थापत्य का कोई अनोखा नमूना बनवाना चाहते थे ।



वे दिन-रात इसी सोच में रहते। एक रात उन्हें विचार आया कि क्यों न एक ऐसा विस्तृत सभागृह बनवाया जाए जो एक ही खंभे पर बना हो और जिसमें तीन-चार हजार दर्शक, सभासद बैठ सकें। ऐसा एक खंभा सभागृह अभी तक देखने की तो बात क्या सुनने में भी नहीं आया है।

एक खंभा सभागृह की अपनी इस कल्पना पर राजा फूला नहीं समाया। सुबह होते ही उन्होंने राज्य के मुख्य इंजीनियर को बुलवा भेजा। उन्हें सभागृह की अपनी कल्पना समझाकर तुरंत ही निर्माण शुरू करने का आदेश दिया।

''महाराज'', इंजीनियर धीरे से बोले- ''सभागृह चार दिन में खड़ा कर सकता हूं मैं, पर पहले इतना सशक्त, सुदृढ़ और लम्बा पेड़ तो मिलना चाहिए जिसका खंभा बन सके, जो इतना भार अकेला ही उठा सके। मुझे तो ...... ।''

''स्थपति, यह काम तुम्हारा है। मैं यह सब कुछ नहीं जानता। तुम सारे वन-उपवनों में से ढूंढ निकालो ऐसा वृक्ष। मैं तो जल्दी से जल्दी सभागृह बना हुआ देखना चाहता हूं।''

स्थपति ने देखा, इतना कहते-कहते राजा की भौहें तन गई हैं। उन्होंने वहां से टल जाना ही ठीक समझा।

राजस्थपति ने अपने सहयोगियों के साथ चार दिन तक घूमकर राज्य के वनों का चप्पा-चप्पा छान मारा, पर उनकी दृष्टि राज-उपवन के हजारों साल पुराने साल-वृक्ष को छोड़कर और किसी पर नहीं टिक सकी। यह साल-वृक्ष अत्यंत विशाल और सुदृढ़ तो था, पर राजा और प्रजा दोनों ही का आराध्य था। साल-वृक्ष को राज्य का सौभाग्य वृक्ष माना जाता था। सभागृह के खंभे के लिए उसके कटवाने के विचार मात्र से ही स्थपति कांप उठे। उन्होंने महाराज को सारी स्थिति बता दी।

विश्वकर्माजी, वह पेड़ राज उपवन में है, सदियों से राज्य परिवार और प्रजा का पूज्य वृक्ष है, तो इससे क्या हुआ, उसे हम एक बड़े कार्य के लिए, राज्य की कीर्ति के लिए ही तो काट रहे हैं। उसके काटने से कौन-सा पहाड़ टूट पड़ेगा ? आप कल सुबह वह पेड़ कटवाकर काम शुरू कर दें।

''यह ढील-ढाल मुझे पसंद नहीं''- राजा ने आदेश सुना दिया। उसी रात अचानक महाराज जाग उठे। उन्हें लगा कि कक्ष में बिजली कौंधी हो या किसी शत्रु की

चढ़ाई की मशालों का प्रकाश खिड़की से उन पर पड़ा हो। राजा ने आंखें मलकर देखा तो वैसा कुछ भी न था, बस एक अत्यंत तेजस्वी पुरुष उनके पलंग के पास खड़ा था।

राजा तुरंत उठ बैठा और प्रणाम करके बोला- "हे दिव्य पुरुष ! आप कौन हैं ? यहां किस हेतु पधारे हैं ?"

"सुखी रहो राजन् ! मैं आपके ही उपवन में पिछले तीन हजार साल से विद्यमान साल-वृक्ष का देवता हूं। उसी साल-वृक्ष का जो तुम्हारे पूर्वजों के समय से राज्य और परिवार का सौभाग्य तरु रहा है, आराध्य वृक्ष रहा है। सुना है, तुमने मुझे काट डालने की आज्ञा दी है ?"

"हां भगवन्, मैं आपको उपवन से राजसभा में श्रेष्ठजनों और कलावंतों के बीच एक कलापूर्ण स्तंभ के रूप में स्थापित करना चाहता हूं। सभागृह में लगाना चाहता हूं ताकि अधिकाधिक अतिथि और श्रेष्ठजन, आपके दर्शन कर सकें। राज्य के सभागृह की कीर्ति दूर-दूर तक फैले। हे साल-वृक्ष के देवता, आपके सिवाय राज्य भर में यह भार उठाने में समर्थ कोई दूसरा वृक्ष नहीं है। आपको काटे बिना इतना बड़ा और अनोखा सभागृह बन ही नहीं सकता।"

"राजा, अगर ऐसी बात है तो काट डालो मुझे। पर एक निवेदन जरूरी है कि मुझे धीरे-धीरे करके हिस्सों में काटना, एकदम से नहीं।"

"ऐसा क्यों कह रहे हैं वृक्ष देवता, हिस्सों में काटने से तो आपको अधिक पीड़ा होगी।"

"जानता हूं राजन्।"

साल-वृक्ष का देवता रूंधे कंठ से बोला- "पर मेरी यह पीड़ा मुझसे उत्पन्न मेरी डालियों पर, मेरी छाया में पले-बढ़े, मुझ पर आश्रित वृक्षकुल, पक्षीकुल और कीटकुल की रक्षा करेगी। आपने अगर सीधे ही मुझे एक साथ जड़ से काट डाला तो मेरे गिरने से ये सब दबकर मर जाएंगे। मेरी पीड़ा सह लेना इनके नष्ट होने से बेहतर है। इतने जीवों की रक्षा के लिए मैं कई घावों का दर्द सह लूंगा। आप पहले मेरा सिर उड़ाएं, फिर मुझे क्रमशः कटवा दें।"

"पर आपको हिस्सों में काटने से इनकी रक्षा कैसे हो सकेगी वृक्ष देवता, मैं समझ नहीं पा रहा हूं।"

'हे नृप श्रेष्ठ ! हम वृक्ष, इस धरती पर जीवनधारा के धारक और पोषक हैं। आप नहीं जानते राजा कि हममें, हमारे फूल-पत्तियों, फलों, डालियों में, जड़ों में कितना जीवन पलता-बढ़ता है। इस प्रचुर जीवन की रक्षा करते हुए ही हमारे शास्त्रों में वृक्षों को काटने का विधान है।"

''वो क्या है देवता ?''

''सुनो राजन्, किसी पेड़ को काटने से एक दिन पहले और काटने वाले दिन ढोल-ताशे बजाकर या बंदूक छोड़कर शब्द करें, जिससे विपत्ति आने का आभास मिल सके। पक्षी-पखेरु अपने अंडे-बच्चों को लेकर उड़ जाएं, दूसरी जगह आश्रय ले लें।

फिर वृक्ष की जड़ों में चारों ओर दूध पानी का सिंचन करें। जिससे छाया हटने पर नन्हें जीवों को तुरंत ही भूख-प्यास और ताप न सताएं, उन्हें पाथेय मिल सके।

तदुपरांत राजन्, वृक्ष के तने पर हल्दी-रोली के आलेपन का घी से स्वस्तिक बनाने का विधान है। कहते हैं इससे घाव पकते नहीं। कटने के बाद पीड़ा भी कम होती है।

यह तो वृक्ष काटने का विधान हुआ राजा, पर जब आपने पूछा ही है तो एक बात और कहता हूं आपसे ...... जैसी आपकी योजना है, मैं नक्काशीदार स्तंभ बनकर, सभागृह में लगकर, दर्शनीय तो अवश्य बन जाऊंगा राजन, पर रहूंगा तो सूखा काठ ही न ? इतने सारे जीवों को आश्रय देने वाला तो न रहूंगा। इस सृष्टि के चलने में, जीवन के प्रवाह में, अपना योग तो न दे सकूंगा। मैं जीवन के स्पर्श से वंचित हो जाऊंगा और इसका कारण होगा तुम्हारी महत्वाकांक्षा।

खैर, मुझे जो कहना था वह कह चुका। बस आप मेरी आखिरी बात याद रखें, मुझे हिस्सों में काटें, ताकि मेरा बड़ा परिवार, मेरे बच्चे, बचे रह सकें।''

साल-वृक्ष के देवता की बातों से राजा की आखें खुल गईं। वह हाथ जोड़कर बोला- ''आप अपनी जगह, उसी तरह, अपने बड़े परिवार के जीवन के रक्षक-पोषक बने रहें वृक्ष देवता, आपको अब कभी नहीं काटा जाएगा। मुझे क्षमा कर दें आप।''

''आप यशस्वी हों राजन्।''

साल-वृक्ष का देवता आर्शीवाद देकर चला गया। कोने में रखे दीप का मद्धिम प्रकाश ही अब कक्ष में फैला था।

दूर कहीं मुर्गे ने बांग दी। मुर्गे की बांग के साथ ही राजा एक खंभा सभागृह न बनवाने का फैसला कर चुका था।

नारियल की ज़न्म कथा

"कौन चढ़ावै भइया धुजा नारियल
कौन चढ़ावै चमेली के फूल
देवी दरसन को जाना जरूर"

पूर्व दिशा में, पौ फटते ही, उधर चौबारे में बैठी स्त्रियों का गीत खत्म हुआ, इधर आंगन में भूरेलाल भगतजी के साथियों ने, अपने-अपने वाद्य-ढोलक, झांझ, पखावज-खड़ताल रख दिए और उंगलियां चटकाकर विश्राम करने लगे ।

आज टेंटी गांव के जादौजी के घर देवी-जागरण, चैत्र की जुन्हाई भरी रात को चारों पहर चला था । सुबह की बेला-चमेली, धूप-गुग्गुल और लौंगों की गंध से भरी हवा, गांव के घर-घर में देवी का उत्साह बांट रही थी और जागरण की समाप्ति का संदेश दे रही थी ।

जादौजी अपने परिवार के साथ, नगर कोट की देवी की यात्रा पर जा रहे थे । निकासी का मुहूर्त निकट था । सबको अपनी-अपनी पड़ी थी । यह लाओ वह लाओ, जल्दी करो— जल्दी करो की पुकार मची थी ।

लेकिन सारे शोरगुल से जैसे बेखबर, पीली धोती पहने, नौ वर्षीय मनोज की आंखें पौरी के दरवाजे पर लगी थी । उसके मन में उथल-पुथल मची थी । "अभी तक क्यों नहीं आए शिबू दद्दा, शहर से तीन आंखों वाला, चुटियादार नारियल लेकर ? जब तक नारियल नहीं आता, तब तक हम चल कैसे सकते हैं ?" भगतजी ने पहले वाले सारे नारियल अस्वीकार कर दिए थे । अंत में शिबू दद्दा को कस्बे के बाजार दौड़ना ही पड़ा ।

जैसे-तैसे प्रतीक्षा की घड़ियां बीती । शिबू दद्दा के नारियल लाते ही भगतजी ने यात्रियों की पीठ पर हल्दी के थापे लगाकर, गा-बजाकर उन्हें पथवारी देवी के मंदिर से विदा किया ।

बैलों में भी जैसे जात का उछाह भरा था । बैलगाड़ी जल्दी ही स्टेशन पहुंच गई । भीड़ काफी थी, पर सबको किसी तरह एक ही डिब्बे में बैठने की जगह मिल गई ।

मनोज सामान की रखवाली के लिए खिड़की के पास बैठे शिबू दद्दा के पास बैठा था। जब गाड़ी चल पड़ी और सब व्यवस्थित हो गए तो उसने दद्दा से पूछा, ''शिबू दद्दा ! क्या आपको मालूम है कि सभी देवी-देवताओं को खास करके देवी की पूजा में नारियल चढ़ाना क्यों इतना जरूरी है ? सुबह भगतजी ने तो आफत ही कर डाली थी।''

शिबू दद्दा खिड़की से मुंह भीतर कर मुस्कराकर बोले- ''भइया, कल तक तो नहीं मालूम था, पर कल की रात ही रात में मैं पूरा नारियल विशेषज्ञ बन गया हूं।''

''वह कैसे ?''

''अरे ! रात के दो-ढाई बजे के करीब जब तुम नींद के मारे फर्श पर ही लुढ़क गए थे, भगतजी ने ''जगदेव का पंवारा'' गाया था। उसी पंवारे में है नारियल की जन्म कहानी और देवी की पूजा में उसके अनिवार्य होने का रहस्य ...।''

''वह मुझे भी बतादो न दद्दा।''

मनोज ने अपनी आंखें शिबू दद्दा के चेहरे पर गढ़ा दीं। वह उनकी बात इतने ध्यान से सुनने लगा जैसे शब्द-शब्द पी रहा हो।

दद्दा बोले— भइया मनोज, धारानगरी के राजा जगदेव नगर कोट की देवी के बहुत बड़े भक्त थे। वे राजा उदयाजीत के पुत्र और राजा भोज के पोते थे।

राजा भोज अपनी रानी दीवलदे के आग्रह पर, गूजर राजा की झील से सारस पकड़ लाया तो इस पर दोनों में युद्ध हुआ। गूजर राजा ने, धारानगरी उजाड़ कर उस पर गधों से हल चलवा दिया। गर्भवती दीवलदे की रक्षा गेला भाट ने की। उदयाजीत का जन्म ननिहाल में हुआ था। वह बड़ा हुआ तो देवी एक दिन उसके स्वप्न में आकर बोली कि अगर तू मुझे अपने पुत्र के शीश की भेंट देने का वचन दे, तो मैं तेरी धारानगरी ज्यों की त्यों बसा दूं। राजा ने वचन दिया तो देवी ने उदयाजीत को अपना राजपाट पाने और पुत्र होने के लिए चमेली का एक फूल प्रसाद रूप में भिजवा दिया।

जगदेव अभी गर्भ में ही थे कि उदयाजीत चौबालागढ़ की रानी अनबोला की पहेली बताने के चक्कर में पड़कर उसके बंदी हो गए। उनके पीछे ही जगदेव का जन्म हुआ। बड़ा होकर वह बड़ा महान वीर हुआ। पैरों से धरती धसकाने वाला पराक्रमी। एक दिन भरी कचैरी में अपनी ऐसी वीरता पर ताना सुनकर वह अपने पिता को

बंदीगृह से छुड़ाने चल पड़ा। रास्ते में उसने अनेक पराक्रम किए। उसकी रानी भी उसके साथ थी।

उधर वचन के अनुसार जगदेव के सिर की बलि लेने के लिए देवी उसे ढूंढती घूमने लगी...।

कोई स्टेशन आया था, शिबू दद्दा बच्चों के लिए पानी वगैरा लाए। जब फिर गाड़ी चली तो मनोज ने पूछा, "आगे क्या हुआ दद्दा" ?



फिर ...... देवी काश्मीर के राजा दलपांगुरे के दरबार में जगदेव को ढूंढते हुए पहुंची जहां वह तीन पाव जौ रोज पर नौकर था।

राजा दलपांगुरे, देवी का उघड़ा शीश देखकर थर्रा गया। बोला, "माता, अपना शीश ढक लो, जो कहोगी दूंगा।"

देवी ने कहा "राजा दलपांगुरे, मेरा सिर ढकना, तेरे वश की बात नहीं है। बोल देगा अपने बेटे का सिर ?"

राजा बोला, "मैं महलों में पूछ आऊं।"

इतने में ही जगदेव नहाकर आया तो उसे देखकर देवी ने अपना सिर ढक लिया। राजा बोला- "अरे ! यह तो मेरे यहां तीन पाव जौ रोज पर नौकर है, यह क्या देगा मइया तुम्हें ?"

राजा की बात न सुनते हुए, जगदेव ने पानी का कलसा और रस्सी नीचे रखे, देवी के सामने अपना सिर झुका दिया और बोला, "माता ! इसे उतार कर, मुझे और *मेरे पिता को वचन मुक्त करो।"*

देवी ने जगदेव का शीश उतार कर थाल में रख लिया। उसे ले जाकर पूजा में बैठी जगदेव की रानी से बोली, "ले"।

रानी ने देवी के चरण छुए, देवी ने आशीष दिया— मेरी की चुरियां अमर रहें। (सदा सुहागन हो।)

"अब और क्या लूं मेरी माता, क्या दे रही हो मुझे" ?

"अपने पति का शीश, ले।"

"शीश !"

"हां"

"मां ! दान में दी गई वस्तु क्या कभी वापिस ली जाती है ?"

अब तो देवी अपने ही दिए गए आशीर्वाद के चक्कर में फंस गई। उन्होंने जगदेव के धड़ पर काटा हुआ सिर वापिस रख दिया।

''अब यह मेरे काम का नहीं है मइया ।'' कहकर रानी ने उसे हटा दिया ।

अब तो देवी बहुत चकराईं । ''अब क्या करुं ?'' अपने मन में उपाय सोचकर, उन्होंने शंकर का स्मरण किया और फिर रूंड पर हाथ फेरा, तो रूंड से मुंड पैदा हो गया । देवी ने जल्दी से अपनी कनिष्ठा चीर कर, मुंड के मुंह में अमृत-बूंद चुआ दी । जगदेव का सिर जीवत हो गया ।

''जगदेव ! तेरी भक्ति, तेरा बलिदान, संसार में अपूर्व है, तू कोई वर मांग,'' देवी प्रसन्न होकर बोलीं ।

जगदेव बोले, ''माता, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दो कि कलयुग में मेरा यह शीश, आप पर, सदैव और बार-बार चढ़े, इसके बिना, आपकी पूजा पूरी न हो । मेरा यह सिर ही आपको दी गई अंतिम बलि हो ।''

''तथास्तु ।'' (ऐसा ही होगा) कह कर, देवी ने जगदेव का कटा हुआ सिर, दूर फेंक दिया । वही, नारियल का वृक्ष हो गया । उस दिन से आज तक, नारियल देवी पर चढ़ता आ रहा है ... ''मनोज, नारियल देवी को, इसीलिए सबसे अधिक प्रिय है क्योंकि वह जगदेव का शीश है ।''

''पर दद्दा, मकान की नींव में भी नारियल फोड़ते हैं न, उसका पानी नींव में डालते हैं, सो क्यों ?''

''मकान की नींव में ही क्यों भइया, जहां कहीं भी, जिस किसी देवात्मा, प्रेतात्मा को, किसी यज्ञ-उत्सव में पहले नरबलि दी जाती थी, अब उसके लिए नारियल चढ़ाकर फोड़ा जाता है । नारियल, नर मुंड का प्रतीक है और नारियल का पानी रक्त का । इसीलिए तो भगतजी को खासतौर से तीन आंखों वाला चुटियादार नारियल चाहिए था । भइया मनोज ! जगदेव का बलिदान, हमारे धार्मिक-सांस्कृतिक इतिहास में बड़ा अपूर्व मोड़ है । अपने सिर का बलिदान देकर, उन्होंने हमारे धार्मिक जीवन को नरबलि के अपराध से मुक्त कर दिया ।''

स्टेशन आ गया था । सब लोग उतर पड़े । यहां से नगरकोट के लिए बस लेनी थी ।

कीर्तिमानों की लकीर

अक्षय जब आज विद्यालय से लौटा तो बहुत ही उदास था। अपनी ही कालोनी का राजेश उसके अर्धवार्षिक परीक्षा में तीनों वर्गों में प्रथम आने पर ऐसी नीच हरकतें करेगा, उसे उम्मीद न थी। अपने पिछड़ जाने की भंडास राजेश ने दोस्तों से शोर मचवा कर, स्कूल की दीवारों पर अक्षय को ''नकलची'' ''चापलूस'' और न जाने क्या-क्या बुरी बातें लिखवाकर निकाली। अपने को अक्षय से होशियार सिद्ध करने का यह कौन-सा तरीका है ? अक्षय समझ नहीं पा रहा था।

इसी उधेड़बुन में चलते हुए, वह घर की सड़क के मोड़ पर शाम को घूमने निकला, दादाजी से टकरा गया।

दादाजी- ''अरे अक्षय बेटा ! ऐसे उखड़े-उखड़े क्यों हो कि पैर कहां पड़ रहे हैं, तुम्हें इसका भी पता नहीं ?''

अक्षय– ''बात कुछ ऐसी ही है दादाजी, आप घूम आएं, तब बताऊंगा।''

अक्षय के उखड़ेपन से चिन्तित दादाजी आज पूरी तरह सांझ ढलने से पहले ही लौट आए। पूरी घटना सुनके उन्होंने कालोनी के बच्चों में फैलने लगे इस ''डाहरोग'' का शुरू में ही इलाज करने का निश्चय किया।

कालोनी के बच्चों के मनोरंजन केन्द्र में शाम को रोज दादाजी ही उनके साथ होते थे। या तो बच्चों को वे कोई बौद्धिक व्यायाम देते या कहानियां सुनते, सुनाते। पहेली और चुटकुला प्रतियोगिता रखते। उनके आपसी झगड़े भी सुलझाते।

आज मनोरंजन केन्द्र में आते ही दादाजी ने घोषणा की– ''बच्चो ! आज से हम बादशाह अकबर के दरबार के नवरत्नों की कहानियां सुनेंगे-सुनायेंगे। तुमने इतिहास में पढ़ा तो होगा इनके बारे में ?''

'''जी पढ़ा है दादाजी'' पिंकी चहकी।

''मुझे तो उनके नाम भी मालूम हैं। मेरी दीदी ने बताए थे ... बीरबल, अबुलफ़जल, फ़ैजी, तानसेन, टोडरमल, अब्दुल रहीम खान् खाना'' चिंटू का उत्साह जोरों पर था।

दादाजी- ''शाबास, तब तो तुम यह भी जानते होंगे किं अकबर को सबसे प्रिय कौन था ?''

''बीरबल'' सारे बच्चे एक स्वर में बोले ।

दादाजी- ''लेकिन क्यों ?''

''क्योंकि बीरबल, सबसे चतुर, हाजिर जवाब, हंसमुख और उन सबसे बुद्धिमान था । वह बादशाह की समस्याएं चुटकी बजाते निबटा देता था ...।'' मनोज बोला ।

''पूरा चुटकुलेबाज और चापलूस था बीरबल । मसखरा, बस बादशाह को हंसाता रहता था .... अरे ! अकबर उसे अपने प्रश्नों के उत्तर पहले से ही बता देता होगा और धाक जम जाती थी बीरबल की... उंह... बड़ा चतुर था ...कहीं का ...।''

सारे बच्चों ने, यह बेसुरी बात सुनकर पीछे देखा । कहने वाला और कोई नहीं, चिढ़ा हुआ-सा बैठा राजेश था ।

''नहीं, नहीं, यह गलत बात है ।'' मुकेश अब चुप न रह सका । ''वास्तव में बीरबल में, कैसी भी समस्या हो, उसे सुलझाने की अपूर्व बुद्धि थी । कई बार बीरबल को दरबारियों ने कितनी ही विकट स्थितियों में डालकर अकबर की नजरों से गिराने की कितनी कोशिशें कीं, पर हर बार उन्हें मुंह की खानी पड़ी ।''

''दादाजी, सारे दरबारी बीरबल से जलकर क्या-क्या करते थे ? हमारे बाबा ने हमें ऐसी कई कहानियां सुनाई हैं । हमें मालूम हैं दरबारियों की काली करतूतें.... ।'' दोनों जुड़वां भाई किंशुक और कंदर्प जब एक ही आवाज में बोले तो सारे बच्चों में जैसे बीरबल की कहानियां सुनने की उतावली फैल गई ।

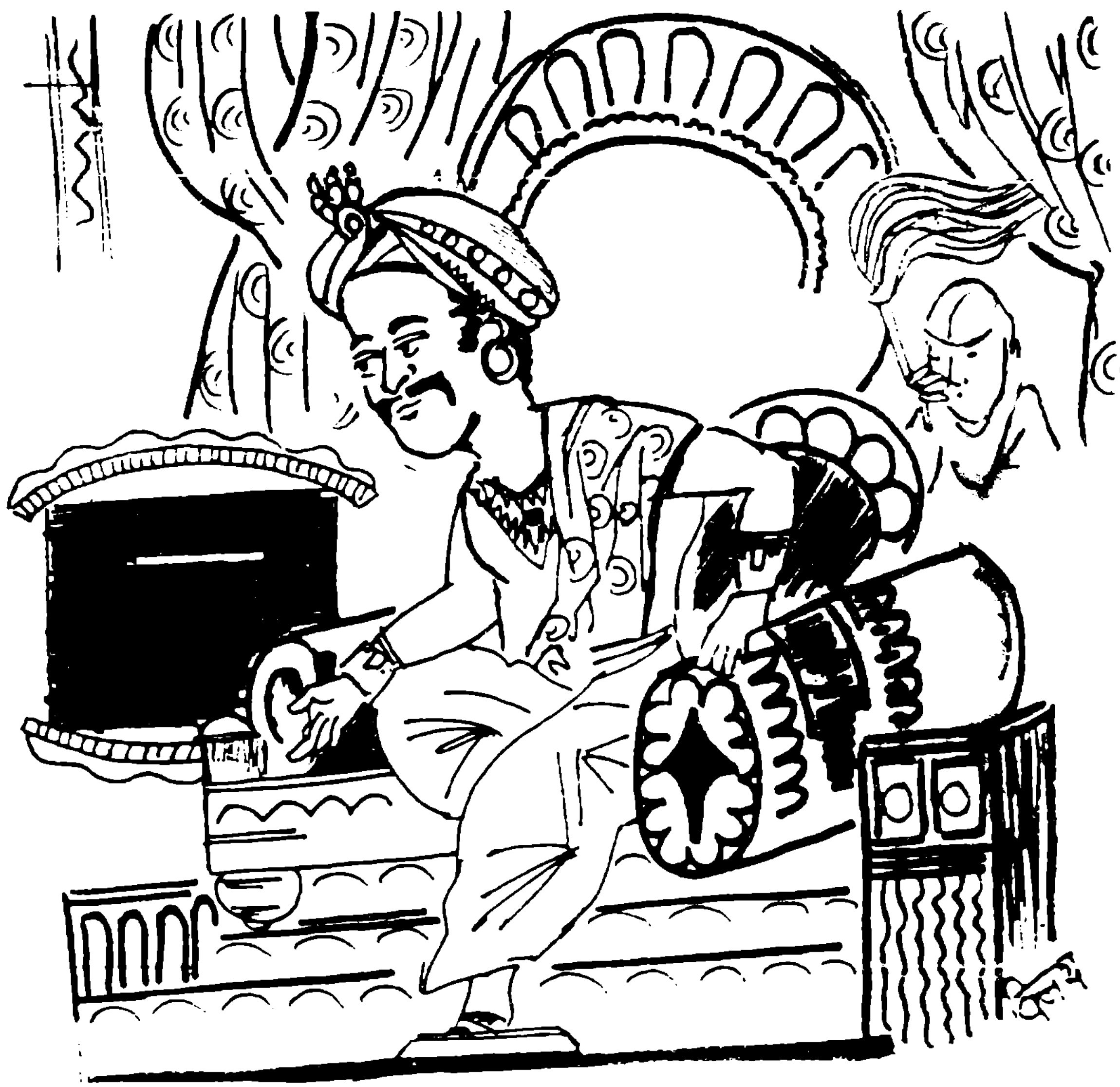
दादाजी- ''ठीक है भाई, बिल्कुल ठीक है तुम्हारी बात ।

आज मुझे मालूम हुआ कि मेरे बच्चे कितने होशियार हैं और कितना कुछ जानते हैं । मैं, मनोरंजन केन्द्र में एक एक करके बीरबल की सारी कहानियां तुमसे ही सुनूंगा, सुनवाऊंगा । पर आज बीरबल की एक कहानी मैं सुनाऊंगा, जो तुममें से कुछ ने नहीं सुनी होगी ।''

बच्चों ने एक स्वर में पूछा- ''कौन-सी दादाजी ?''

मिटाए बिना बड़ी लकीर छोटी करने की। बच्चों, यह कहानी हमारे प्रतियोगिताओं के इतिहास की एक बहुत ही बड़ी घटना है। दादाजी ने बच्चों के, हमने सुनी हैं, हमने नहीं सुनी है, के मिले-जुले से उठे शोर को अनसुना करते हुए अपनी बात जारी रखी। "जिन्होंने सुनी है वे भी चुपचाप दुबारा ध्यान से सुनें।"

यह तो तुम सभी जानते हो कि बीरबल के विशेष आदर का पात्र और बादशाह के हमराज होने की बात से जले-कुढ़े दरबारी रोज कोई न कोई झमेला खड़ा करते, बादशाह के कान भरते। अकबर इससे तंग आ गया था। एक दिन इससे छुटकारा पाने



के लिए अकबर ने एक शर्त रखी। जो कोई भी उसे पूरा कर देगा, उसे, बीरबल से बड़ा मान लिया जाएगा।

'देखो दरबारियों !'' बादशाह ने कहा, ''तुममें से जो भी कोई मेरी इस काले तख्ते पर खींची हुई लकीर को बिना छुए, बिना इधर-उधर से मिटाए इसे छोटी करके दिखा देगा उसे मैं भरी सभा में आज से बीरबल से श्रेष्ठ मान और बीरबल का ओहदा दे दूंगा, ... पर शर्त है, बिना मिटाए, लकीर छोटी करने की।''

''फिर क्या हुआ दादाजी ?'' बच्चों की उत्सुकता उछल रही थी।

दादाजी- ''होना क्या था....''।

दरबारियों ने तो ऐसी स्थिति का पहले कभी सामना ही नहीं किया था। वे, लकीर को, बिना छुए, बिना किसी तरफ से मिटाए, उसे कैसे छोटी कर सकते थे। बादशाह की यह बात सुनते ही सब पसीना-पसीना हो गए।

''फिर, दादाजी ....''

फिर क्या.... तब, बादशाह ने बीरबल को बुलाकर, उनसे लकीर छोटी करने को कहा। जैसे ही बीरबल तख्ते के पास पहुंचे, सारे दरबारियों की आंखें उन पर टिक गई, सबकी सांसें रुक गई। बुरे फंसे हैं आज बीरबल, देखें कैसे करते हैं लकीर छोटी, बिना छुए, बिना मिटाए ....।

बीरबल ने सहज भाव से खड़िया उठाई और बादशाह की खींची हुई लकीर के नीचे, उससे बड़ी लकीर खींच दी... देखते ही देखते, बादशाह की लकीर छोटी हो गई। दरबारियों के मुंह आश्चर्य से फटे रह गए।

अकबर ने कहा- ''अब तो आप सब मानते हैं, बीरबल की बुद्धि का लोहा ? अब तो सबकी समझ में आ गया होगा कि क्या फर्क है बीरबल में और आप मैं ? आप सब सिर्फ किसी को मिटाकर, नीचे गिराकर उससे ऊपर उठना, बड़ा बनना जानते हैं, पर बीरबल किसी को गिरा-मिटाकर उसका बड़प्पन कम नहीं करते बल्कि उस बड़प्पन, उस श्रेष्ठता से आगे बढ़कर, उससे बड़े बड़प्पन से अपने को बड़ा बनाते हैं ...।'' यह कहकर बादशाह चुप हो गए। सभी दरबारियों के सिर शर्म से झुक गए।

''प्यारे बच्चों !'' दादाजी ने बहुत ही कोमल स्वर में कहा– ''बड़े होकर और आगे जाकर तुममें से कोई खिलाड़ी, वकील, डाक्टर, इंजीनियर और नेता बनेगा... तुम में से कोई गप्पबाज भी यदि बने तो मुझे कोई एतराज नहीं है । एक बात हमेशा ध्यान में रखना, किसी भी विद्या, कला, तकनीक और खेल के क्षेत्र में अपने साथी को गिराकर, उसको पीछे खींचने की कोशिशें करके, उसका अहित करके, तुम उसे पीछे नहीं छोड़ सकते, बड़े नहीं बन सकते । कोई भी प्रतियोगिता तुम नहीं जीत सकोगे, क्योंकि तुम्हारी सारी शक्ति उसे गिराने की तरकीबें सोचने में लग जाएगी । मान लो वह गिर भी गया, हार भी गया, तो तुम्हारे हाथ वास्तव में क्या आया ?

बच्चों ! मेरा तो मन कहता है कि रिकार्ड तोड़ने की बात जो हम आज हर प्रतियोगिता के बारे में करते हैं । बीरबल की इसी खींची हुई बड़ी लकीर की देन है ...। जरा सोचो तो, आज ओलम्पिक में यदि कोई खिलाड़ी अपना या दूसरे का स्थापित किया हुआ रिकार्ड तोड़ता है, तो कैसे ? पहले के रिकार्ड से अधिक ऊंचा, अधिक क्षमता वाला कीर्तिमान बनाकर के ही तो तोड़ता है । या कोई और भी तरीका है कीर्तिमान तोड़ने का ? भई ! किसी को यहां पता हो तो हमें भी बताएं ।'' कहते हुए दादाजी ने राजेश की तरफ देखा ।

''नहीं है दादाजी, नहीं है'' बच्चे एक स्वर में बोले ।

पर ....आज तो ''कीर्तिमानों की लक़ीर'' की यह बहुत ही मजेदार बात निकली । हमारा तो कभी इस तरफ ध्यान ही नहीं गया । आज की यह कहानी तो दादाजी सारी कहानियों से अच्छी रही । अच्छा दोस्तों, अब घर चलो । क्या चलें दादाजी अब समाचारों का वक्त हो गया है ।

''हां चलो बच्चो'' कहकर, दादाजी ने अपनी छड़ी उठाई ।

बच्चे, प्रणाम दादाजी, नमस्कार दादाजी, कहते हुए भाग गए । परन्तु अक्षय, बच्चों के झुंड में नहीं था । दादाजी अक्षय को मनोरंजन केन्द्र में इधर-उधर देखने लगे । तभी यकायक तख्त वाले कोने में उनकी निगाह गई । वहां थोड़ा-सा अंधेरा था । दादाजी ने देखा कि वहां, अक्षय और राजेश, एक दूसरे के कंधों पर हाथ रखे खड़े थे ।

दूल्हा-दुल्हन और चोर

"अब हम शिलांग पाइन्ट पर आ पहुंचे हैं।" पथ दर्शिका कुमारी लिंडा की मीठी आवाज़ टूरिस्ट बस में गूंज उठी। बस के मोड़ लेते ही, हिमालय की बर्फीली घाटियों से आई हवा ने सैलानियों को सिहरा दिया।

अपनी मां के साथ, विजय सबसे पहले नीचे उतरा और पाइन्ट पर जा खड़ा हुआ। लेकिन अफसोस, जब तक कुमारी लिंडा वायुसेना क्षेत्र से प्रवेश की अनुमति लाई, तब तक पूरा शिलांग हल्के-फुल्के भूरे बादलों से ढक गया था। पीठ की तरफ की चोटियां सुनहरी धूप में नहा रही थीं, पर दूसरी तरफ शिलांग नगर तो पूरा ही बादलों में अदृश्य हो गया था। विजय ने देखा, हिरन के बच्चे जैसे बादलों में कुलाचें भर रहे हैं। क्या यही है पहाड़ी मौसम ? पल-पल में बदलता।

अब, सभी सैलानी बड़े निराश थे। थोड़ी देर यों ही रहा, फिर अपनी-अपनी रुचि की टोलियां बन गईं। चाय और फोटो खींचने का दौर चलने लगा।

सरिता को पता भी नहीं लगा कि अपनी मां को, कब पहाड़ी सौंदर्य में डूबा छोड़कर, विजय एक चट्टान् पर बैठे बस ड्राइवर और लिंडा के पास जा खड़ा हुआ। जब सरिता लपक कर वहां पहुंची तो विजय बोला- "तुम्हारे लिए ही सुपारी लेने आया था। मां, देखो तो ये लोग पान कैसा बनाते हैं।"

सरिता ने देखा, लिंडा के हाथ में एक विशिष्ट आकार में मोड़ा हुआ पान का बीड़ा था, जिसके मुंह पर, हरी; ताजा, सुपारी का टुकड़ा लगा था।

"पूछो न मां, ये क्यों इस तरह, पान के मुख पर सुपारी का टुकड़ा लगाते हैं ...?"

पर सरिता को पूछने की जरूरत नहीं पड़ी। विजय की बात पर लिंडा मुस्कुराई और ड्राइवर का गोरा माथा, जिस पर बड़े सुंदर ढंग से दही-चावल का टीका लगा था, उजली हंसी से दमक उठा।

"मैडम" लिंडा बोली- "इतने टूरिस्ट लोग आते हैं पर आज तक किसी ने सुपारी के टुकड़े के बारे में पूछा नहीं। आपका बेटा बहुत होनहार है। मैं बताती हूं ... यह तो आप जानते हैं न कि शिलांग निवासी खासी जनजाति के हैं ?"



''जी हां''

आप शायद गुवाहाटी से यहां आई हैं। वहां पान बाजार तो देखा होगा आपने ? वैसे आप रहती कहां है ?

''आगरा, उत्तर भारत में'' पर यह सब क्यों पूछ रही हैं आप ? विजय बोला। यों ही, एक बार की बात याद आ गई। जब मैं अपनी मां के साथ वृन्दावन गई थी तो रास्ते में दो किशोर लड़के, पहेली बुझा रहे थे। वह पहेली, मुझे आज भी याद है।

चार कबूतर चार ई रंग

अटरिया में बैठे तब एक ई रंग (पान का बीड़ा)

(कत्था, चूना, पान, सुपारी)

इस पहेली का उत्तर था ''पान का बीड़ा'', ठीक है न ? लिंडा खिलखिला पड़ी।

सरिता अनजान बनी बोली– "अच्छा, मुझे तो नहीं मालूम था आप तो हिन्दी अच्छी तरह जानती हैं।"

हिन्दी, टुरिस्ट ट्रेनिंग में हमें पढ़ाई जाती है। पर सारे सैलानी अंग्रेजी में ही गाइड होना पसंद करते हैं, हिन्दी तो आज बोल रही हूं।

ऐसा ! लेकिन क्यों ?

वह बाद में विजय बोला– आप तो पहले पान के बीड़े के मुख पर सुपारी लगाने की बात बताएं, वर्ना वक्त खत्म हो जायेगा।

"ऐसा है दीदी" लिंडा बोली– हम खस्सिया आदिवासियों में, पान-सुपारी और तम्बाकू को लेकर बड़ी ही विचित्र, मगर मधुर कल्पना है। हमारे लोक विश्वासों में "पिंपो" यानी पान दुल्हन मानी जाती है और क्वाय (सुपारी) दूल्हा। कत्था इनके प्रेम का रंग है। दोनों साथ-साथ रहते हैं, एक के बिना दूसरा अधूरा है। हमारे समाज में इनका साथ शुभ और पवित्र माना जाता है।

पर, एक बार ऐसा वक्त आया कि इस प्यारे युगल के बीच में, पान-सुपारी के बीड़े में, एक और स्वाद घुस आया.... चुपके-चुपके चोरी-चोरी से, वह स्वाद शायद तम्बाकू का ?

"बिल्कुल ठीक है आपका अनुमान" लिंडा हंसी। "तो हमारे यहां तम्बाकू (थूमा) को चोर कहा जाता है। यह चोर कहीं भीतर घुसकर दुल्हन पर अधिकार न कर ले, प्रेम न चुरा ले, इसलिए दूल्हा "क्वाय" यानी सुपारी दरवाजे पर पहरेदारी के लिए रहता है। लेकिन, लोग तो अब तम्बाकू के स्वाद के दिवाने हो गए हैं। अतः पान-सुपारी तो वे खुले आम पूरे मुंह में खाते रहते हैं। लेकिन तम्बाकू, दाढ़ों के बीच में दबाकर, चुपके-चुपके चोर की तरह खाते हैं। जैसे चोर, चुपके-चुपके चोरी करता है। पान के लाख प्रेमी हों पर वे भी तम्बाकू तो, दांतों में दबाकर, चुपके-चुपके ही खाते हैं।"

'देखिए, इस तरह" कहकर ड्राइवर ने एक चुटकी तम्बाकू दाढ़ों के बीच में दबाली और बस में चढ़कर तेजी से हार्न बजाने लगा।

पाइन्ट के किनारों पर बिखरे सैलानी लौटे। अभी भी बादल नहीं छंटे थे। प्रतीक्षा से थके-ऊबे सैलानी बस में बैठ गए। कुछ न पाने का भाव उनके चेहरों पर छाया था।

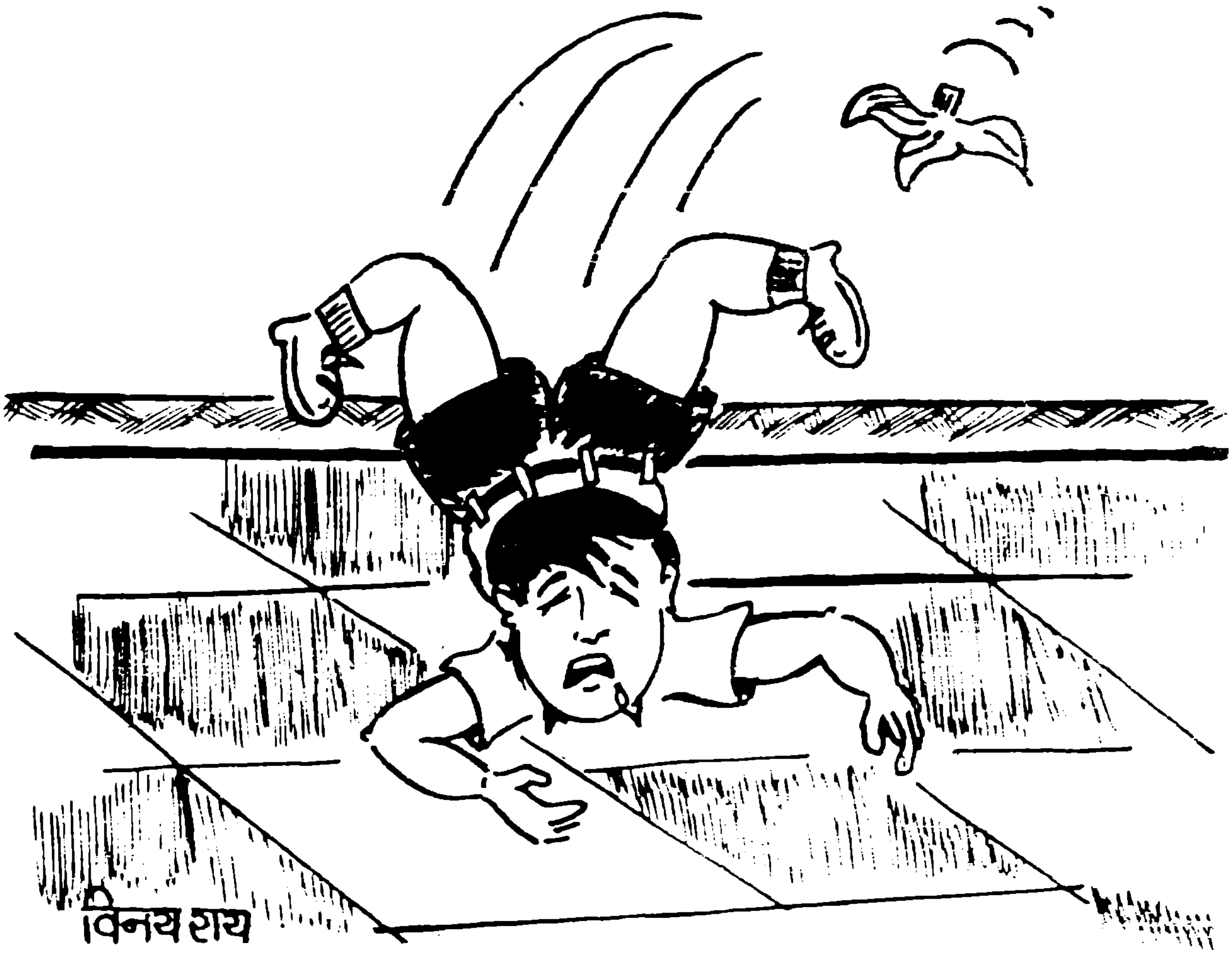
पर विजय और सरिता प्रसन्न थे। हल्की बूंदा-बांदी शुरू हो गई थी।

केले के तना क्यों नहीं होता ?

आज पूर्णिमा थी। मोहल्ले के सारे बच्चे अरुण के चबूतरे पर खेल रहे थे। वे खेल कम रहे थे, प्रसाद की प्रतीक्षा में ज्यादा थे। तभी कमरे से ऊंची शंख ध्वनि और घंटे-घड़ियाल की आवाज के साथ आरती की अंतिम कड़ी सुनाई पड़ी :-

चढ़त प्रसाद सवायों कदली फल मेवा

धूप, दीप, तुलसी से, राजी सत सेवा ओउम ...



आरती पूरी हुई जानकर बाहर खेल रहे बच्चे प्रसाद लेने कमरे में चले गए। कौन पहले और कौन कितनी बार प्रसाद ले, इसकी होड़ थी। कुछ प्रसाद लेकर बाहर निकल रहे थे, कुछ भीतर घुस रहे थे कि तभी अरुण के धड़ाम से गिरने और रोने की आवाज सुनकर दादाजी को, प्रसाद देना छोड़कर बाहर आना पड़ा।

अरुण मुंह के बल गिरा था। उसका दांत, ओठ में चुभ गया था, खून निकल रहा था। यह सारी करामात लापरवाही से केला खाकर सीमेंट के फर्श पर फेंक दिए गए केले के छिलके की थी, जिस पर से अरुण का पैर फिसल गया था।

''कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, बेटा अरुण बस चुप हो जाओ अब।'' दादाजी ने अरुण को उठाते हुए कहा-- ''तुम्हें तो पूजा का मौका और दंड दोनों ही मिल गए। चलो मुंह हाथ धो डालो। अब व्रत छोड़ें और खाना खाएं। आज रात को कीर्तन के बाद मैं तुम्हें केले के जन्म की कहानी सुनाऊंगा।''

अरुण के दादाजी, हर पूर्णमासी को सत्यनारायण की कथा-पूजा का आयोजन करते थे। बच्चों को, कथा से अधिक प्रसाद में और कीर्तन से ज्यादा उसके बाद की कहानी में मजा आता था। लीलावती-कलावती की वही कहानी, कितनी बार सुनते वे ?

पर रात को, दादीजी कितना पुकारती रहें कि आज देर हो गई है कीर्तन में, आज कहानी नहीं होगी। वे दादाजी को उठने ही नहीं देते थे, जब तक कि कहानी न सुन लेते। दादाजी की असम-यात्रा से यह क्रम भंग हो गया था। पर, आज तो दादाजी सुनाएंगे ही, चाहे कितनी ही देर हो जाए।

अरुण के ओठ का दर्द, केले की कहानी सुनने के चाव में आया-गया हो गया। कीर्तन में, वह जोर-जोर से मंजीरे बजाकर और कीर्तन गाकर यह बता रहा था कि अब उसके तनिक भी दर्द नहीं हो रहा। परन्तु, सूजे ओठ से उसकी यह कोशिश देख-देखकर, सीमा और नीता की हंसी फूटी पड़ रही थी, जिसे वे कीर्तन के बोलों में छुपाने की कोशिश कर रही थीं।

आखिरकार, बच्चों में चलती इस जुगलबंदी का अंत हुआ। दादाजी ने सबसे पहले बच्चों से खामोश होने को कहा, फिर पूछा- ''सच-सच बताना, फर्श पर छिलका फैंका किसने था ?''

''मेरा ही गिर गया था दादाजी,'' अरुण गर्दन झुकाए बोला।

"गिर गया था, या ..." दादाजी मुस्कराए और अरुण की ओर देखा तो उन्हें समझते देर नहीं लगी कि किसी से अपना हिसाब-किताब चुकाने के लिए ही, अरुण ने यह हरकत की थी।

"बच्चो !" दादाजी बोले- "यह तो तुम जानते ही हो और देखा भी है तुमने कि भगवान् की पूजा में, पांच फल और पांच मेवाएं अवश्य रहते हैं, जिनमें पहले स्थान पर केला है।"

"जी, जानते हैं दादाजी"

आज हम केले की खेती करते हैं, बगीचे लगाते हैं, घरों में भी उगाते हैं, पर प्रारंभ में केला, बन फल था। आज भी, नीलगिरी पर्वत श्रृंखला की चोटियां और घाटियां, जंगली केलों के घने झुरमुटों से, वनों से ढकी हैं। हमारे देश के पूर्वी और दक्षिणी प्रदेशों की देन है केला।

असम की कामाख्या पहाड़ी के कदली वन, हमारे पुराने साहित्य में प्राचीन समय से ही प्रसिद्ध रहे हैं। बच्चों ! केला, कदर्लि, केलि और कदली केले के ही पर्यायवाची हैं यह भी तुम्हें मालूम होगा ...।

"जी दादाजी"

शब्द "कदली" तो हमेशा कथा में आता है।

तो, जहां केले के जंगल, वहीं उसके जन्म की कहानी भी होनी चाहिए। असम की जनजातियों में प्रचलित केले के जन्म की कहानी जब मैंने गाइड से सुनी तो मुझे भी हर पूजा में केले की इतनी महत्ता की बात समझ में आई।

हां, तो अब तुम भी सुनो वह कहानी। शिलांग में, वहां के आदिवासी अपने देवताओं के समाधि स्थल को "चेदी डो डूब-डूब लूम-लूम" कहते हैं। एक दिन ऐसा हुआ कि जंगली बैलों का देवता "कायूम पालो चाब्बू" उस कब्रिस्तान में गया और सारे देवताओं की आराधना में अपने दोनों कंधें, जोर-जोर से हिलाने लगा।

चाब्बू देव का अपने देवों की आराधना में कंधे हिलाना इतना तेज था कि उनके शरीर से, रक्त बह-बह कर धरती पर गिरने लगा।

रक्त, धरती पर गिरा तो अवश्य पर धरती उसे सोख गई, वह लुप्त हो गया।

थोड़े दिन बाद उस रक्त से एक पेड़ उग आया, वह केला था, पर कुछ विचित्र-सा था यह पेड़ । सुन रहे हो न बच्चो, नींद तो नहीं आने लगी ...।''

''कतई नहीं दादाजी, आप आगे कहिए'' सबने एक स्वर से कहा ।

हां तो बच्चो, इस केले के वृक्ष के, न रीढ़ की हड्डी न तना था, न शाखाएं । अन्य वृक्षों जैसी काष्ठ शक्ति भी इसके पास नहीं है । एक के ऊपर एक जमी पत्र छाल ही है, जिसके ऊपर यह खड़ा है । जैसे तना बना है, उसी तरह इसका फूल भी अपनी छाल में फलों को छुपाए रहता है और फल देखें, तो उसमें भी छाल उतरने के बाद गूदा ही गूदा है । है कि नहीं ?

''सो तो है ही,'' सीमा बोली ।

तो इसका कारण यही है बच्चो कि केला, चाब्बू देव के रक्त, केवल रक्त से पैदा हुआ है अतः दूसरे वृक्षों जैसा, उसका तना नहीं है ।

चूंकि केला देवताओं के समाधि स्थल की धरती पर, पूजा करते वक्त, चाब्बू देव का रक्त गिरने से पैदा हुआ, अतः वह वन्यशस्य की, वनस्पति की, सबसे पवित्र चीज है ।

केला ही ऐसा अकेला फल है जो कितने ही दिन रखा रहे, इसमें कीड़े नहीं पड़ते । यह कीड़ा लगने से नहीं सड़ता, बस गल कर पानी हो जाता है ।

इसके साथ ही, चाब्बू देव के रक्त, वह भी पूजा में चढ़ा रक्त से जन्मा यह फल, अपना अपमान करने पर, पैर पड़ने पर, पैरों तले रौंदे जाने पर, किसी को बख्शता भी नहीं है । बच्चों, अपने निरादर की, पैरों से कुचलने की सजा तो यह साष्टांग दंडवत कराके और देवता की पूजा में कुछ रक्त बूंदें चढ़वा कर देता है ।

बेटा अरुण, अब तो समझ गए न कि क्यों मैंने कहा था कि भगवान ने तुम्हें दंड भी दिया और तुम्हारी पूजा भी मान ली ।

दादाजी की बात सुन अरुण तो झेंपा हुआ-सा मौन ही रहा, पर शेष बच्चे अब जोर से खुलकर हंस पड़े थे ।

एक वृक्ष किंवदंतियों भरा

टूरिस्ट बस के दक्षिणेश्वर से निकलते-निकलते क्वार की धूप काफी तीखी हो चली थी, पर धूप से कुछ बढ़कर ही चटक हो गई थी चंदन की उत्सुकता।

''ऊंह'' वह मन ही मन में बोला। यह बस तो हमें इधर-उधर न जाने कहां-कहां ले जा रही है ...पता नहीं यह बेलूरमठ हमें कब दिखाएगी ...।

इतने बड़े कलकत्ता शहर में चंदन को जैसे दो ही स्थान देखने हों ...बाटनीकल गार्डन और बेलूरमठ। ईडन गार्डन तो वह स्टेशन से महाराष्ट्र निवास आते में ही देखता आया था। वैसे भी उसे देखने का कोई खास मन नहीं था चंदन का और बाटनीकल गार्डन भी उसे कोई सारा थोड़े ही देखना है। वह तो बस वहां का विश्व विख्यात बरगद देखना चाहता है।

देखना बेलूरमठ में भी उसे बरगद ही है लेकिन वह वट ''कृष्णवट'' है। जिसकी पत्तियां विशेष हैं। चंदन के कलकत्ता जाने की बात सुनकर टीचरजी ने पत्तियों को ध्यान से देखने की ताकीद जो कर दी थी। ''कृष्णवट'' नाम से ही रास्ते भर चंदन के मन में कितनी-कितनी कल्पनाएं आती रही हैं।

''मां अभी और कितनी दूर है बेलूरमठ ?''

आखिरकार चंदन से रहा नहीं गया। उसने खिड़की से मुंह हटाकर मां से पूछा।

पर उत्तर दिया टूरिस्ट बस के गाइड शचीन्द्र सेन ने- ''बस हम आ ही पहुंचे हैं बेटे, क्या नाम है तुम्हारा ?''

''जी, चंदन''

''चंदन बेटे, यह बताओ कि बेलूरमठ में तुम्हें इतनी दिलचस्पी किस लिए हैं ?''

जी...अंकल, वहां राष्ट्र के गौरव, स्वामी विवेकानंदजी की, मां शारदा की समाधि है सब धर्मों का एक मंदिर है, बड़ा-सा विद्या केन्द्र है और ...

''और क्या बेटे ?''

''और वहां कृष्णवट भी तो है अंकल । मुझे तो बस वही देखना है ... हमारी टीचरजी ने कहा है कि उसकी पत्तियां ... जैसे प्रकृति मां के दिए दौने हैं ।'' गाइड सेन मुस्करा पड़े । ''चंदन बेटा, मैं तुम्हें अच्छी तरह दिखाऊंगा ''कृष्णवट'' और उसकी कहानी भी सुनाऊंगा ।''

बेलूरमठ के फाटक पर बस रुकते ही चंदन सबसे पहले उतर कर भीतर लगी हरी घास पर दौड़ गया । मां और गाइड सेन ने पुकारा तो वह लौट आया ।

''मां यहां टिकट थोड़े ही लगता है मैं ...''

मां हंस पड़ी और धूप से लाल हुए चंदन के गाल थपथपाते हुए बोली- ''टिकट तो नहीं लगती पर सबके साथ जैसे-जैसे अंकल दिखाते जाएं, वैसे ही देखो न, वे तुम्हें सारी जानकारी भी देंगे ।'' मां की बात पर थोड़ा-सा सहम कर चंदन सबके साथ चलने लगा ।

यह देखो ! यह रामकृष्ण परमहंस के विचारों का साकार रूप है, सर्वधर्म समभाव मंदिर । एक ही मंदिर में चर्च, मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा सभी दिखाई देते हैं न ? जरा ध्यान से देखें, ऊपर वह कलश और कलश का कमल... देखा न, ...इस बेलूरमठ की स्थापना 1886 में रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के बाद 1897 में स्वामी विवेकानंद ने की थी । यह मां शारदा की समाधि है और यहीं स्वामी विवेकानंदजी की समाधि भी है, पर इसके पहले जरा इधर आइए...

यह ''कृष्णवट'' है । गाइड सेन मुख्य मंदिर से थोड़ी दूर आकर एक वृक्ष के नीचे खड़े हो गए । सबके आ जाने पर उन्होंने झुककर नीचे गिरा एक पत्ता उठा लिया और बोले ''जरा देखें तो इसके पत्ते....''

चंदन ने बड़े कौतूहल से नीचे गिरे पत्ते उठा लिए और ध्यान से ''कृष्णवट'' को देखने लगा । उसने पाया, आमतौर से पाए जाते बरगदों जैसा विशाल तो नहीं है पर अच्छा है और पत्ते तो कितने सुन्दर, अनूठे हैं ।

''इस वट के ऐसे पत्ते क्यों हैं अंकल ?''

चंदन की उत्सुकता बढ़ती ही जा रही थी ।

इसकी एक बड़ी मजेदार किंवदंती है बेटा... । यह तो सभी जानते हैं कि कृष्ण

को दही-माखन बड़ा प्रिय था और वे वन में गायें चराते हुए, मथुरा के लिए दूध-दही ले जाती गोपियों से दान लेकर, अपने साथियों के साथ माखन खाते थे।

एक बार क्या हुआ कि कृष्णजी की बंशी सुनकर मुग्ध हुई गोपियों की मथुरा अपना दही-माखन ले जाने की इच्छा ही नहीं हुई। उन्होंने मन में सोचा सारा दूध, दही-माखन, आज कृष्ण और उनके सखाओं को खिलाना चाहिए। अपना निश्चय उन्होंने कृष्ण को बताकर दही-दूध की मटकियां उनके सामने रख दीं।

कृष्ण ने कहा- ''यह तो बड़ा अच्छा है। आज इतने सारे दही-माखन का सबके साथ वनभोज हो जाए।''

पर वनभोज हो कैसे ? गोपियों के पास दूध-दही खिलाने-खाने के लिए सकोरे (कटोरे) तो थे ही नहीं।

समस्या के हल के लिए कृष्ण ने इधर-उधर निगाह घुमाई। पास ही बरगद का एक तरुण वृक्ष खड़ा था। कुछ सोच कृष्ण ने उसका एक पत्ता तोड़ा और दौने की शक्ल में मोड़कर उसे पेड़ के ऊपर फेंक दिया। देखते ही देखते वहां के सारे पत्ते दौने के आकार में बदल गए। कृष्ण के साथ गोपी-ग्वालों ने उन दौनों में छककर दूध-दही खाया, वनभोज का आनंद लिया। कहते हैं उस वट-वृक्ष के पत्ते तबसे हमेशा के लिए द्रोण के आकार के हो गए। नाम भी उसका पड़ गया ''कृष्णवट''।

''पर अंकल, ब्रज से ''कृष्णवट'' कलकत्ता कैसे आ गया ?'' चंदन बड़े ही ध्यान से पूरी कहानी सुन रहा था, उसने तुरंत पूछ डाला।

''केवल कलकत्ता में ही नहीं चंदन, उस घटना के बाद तो ''कृष्णवट'' और भी कई जगह पहुंच गया है पर इसके यहां आने की भी दंत कथा है ...।''

''वो कौन-सी अंकल ?''

''ऐसा कहा जाता है कि चैतन्यमहाप्रभु अपनी मंडली के साथ जब ब्रज यात्रा पर गए तो वृन्दावन में प्रेम विह्वल हो कृष्णवट से लिपट ही गए। उनका प्रेम कहो या अनायास की बात, उनके उत्तरीय से चिपक कर ''कृष्णवट'' का एक बीज यहां चला आया और जम गया...।''

''किन्तु इससे भी महत्वपूर्ण एक और दंतकथा है ''कृष्णवट की'' उसे सुनले,

सैलानियों में से एक सज्जन बोल उठे। इस ''कृष्णवट'' के पत्ते में काली मां ने रामकृष्ण परमहंस के हाथों दुग्धपान किया है।''



अबकी बार चंदन के साथ अनेक उत्सुक यात्रियों की दृष्टि उन सज्जन की ओर उठ गई थी ।

''मुझे मेरे दादाजी ने यह बात बताई थी... कि आज... जहां यह बेलूरमठ है, किसी वक्त में यहां घना जंगल था । जैसा कि आप लोग जानते ही हैं, बंगभूमि का अधिकांश भाग मां काली का भक्त और शाक्तमत अनुयायी है... तो इस जंगल में अनेक योगी, कापालिक, शक्ति साधना करते, बलि देकर मां काली को प्रसन्न करते, उनका खप्पर रक्त से भरते ।

एक बार ऐसा संयोग हुआ कि स्वयं रामकृष्ण परमहंस बलि के दृष्टा बन गए । वे देखते जानते तो थे कि काली मां को बलि चढ़ाई जाती है । पर उस रात न जाने क्यों विवश दीन पशुओं की चीत्कार से उनका हृदय दहल गया । वे व्याकुल हो उठे ।

उन्होंने मां काली से प्रार्थना की ''मां !'' जगत धात्री मां, क्या तुझे इन निरीह पशुओं का रक्त-मांस चाहिए ? प्राण चाहिए ? मैं जानता हूं ऐसा नहीं है । तब तू नैवेद्य रूप में क्यों नहीं इनका दूध स्वीकार करके प्रसन्न होती ? दूध भी तो इनका प्राणरस है वह भी तो आत्मदान है । ले मां ! आज अपने सपूत चैतन्य के लाए हुए इस ''कृष्णवट'' के दौने में दूध का भोग लगा, प्रसन्न होकर इन साधकों को आशीष दें ....।''

''तब दादाजी ने मुझे बताया था मित्रो कि मां काली, रामकृष्ण परमहंस के सामने प्रत्यक्ष हुई और उन्होंने दूध पी लिया ।

उस दिन के बाद लोग ऐसा कहते हैं कि उन साधकों ने ठाकुर की इच्छा जानकर बलि चढ़ाने की रीति को रोकने का प्रयास किया । समयान्तर से धीरे-धीरे, बंगाल में पशुबलि बंद होने लगी ।''

''चंदन ! अब तो तुम खुश हो न ? अब तो सुन ली न ''कृष्णवट'' की सारी कहानियां । चलो, अब विवेकानंद की समाधि देखें ।''

गाइड सेन ने जब यह कहा तो सभी ने देखा चंदन जल्दी-जल्दी अपने बैग में कृष्णवट के पत्ते रख रहा था । अपने मित्रों और शिक्षकों को दिखाने के लिए उन्हें एक अनूठा उपहार देने के लिए ।

ताश के पत्ते और देखने वाली आंखें

नए शिक्षामंत्री, शपथ ग्रहण करते ही, अपनी अनुशासनपूर्ण आदर्श शिक्षानीति के लिए, तुनक मिजाजी और लाल पीले होने वाले स्वभाव के लिए प्रांत भर में विख्यात हो चले थे। कहीं भी, किसी जगह, जरा-सी कमी पर वे पूरी मशीनरी हिला डालते। पर, उनकी अनुशासनपूर्ण शिक्षानीति का मतलब इतना ही था कि जब वे निरीक्षण के लिए आएं तो सारी शिक्षण संस्था कतारबद्ध हो उन्हें सलामी दे, शिक्षक और प्राचार्य भी झुक-झुक जाएं, खूब हार-फूल और मान वंदना मिले। लेकिन शिक्षानीति के मामले में वे कोरे थे। समझदार लोग व्यंग से उन्हें शिक्षा विशेषज्ञ कहा करते और वे फूलकर कुप्पा हो जाते। थोड़े ही समय में उनकी कार्यवाहियों ने पूरे प्रदेश में तहलका मचा दिया।

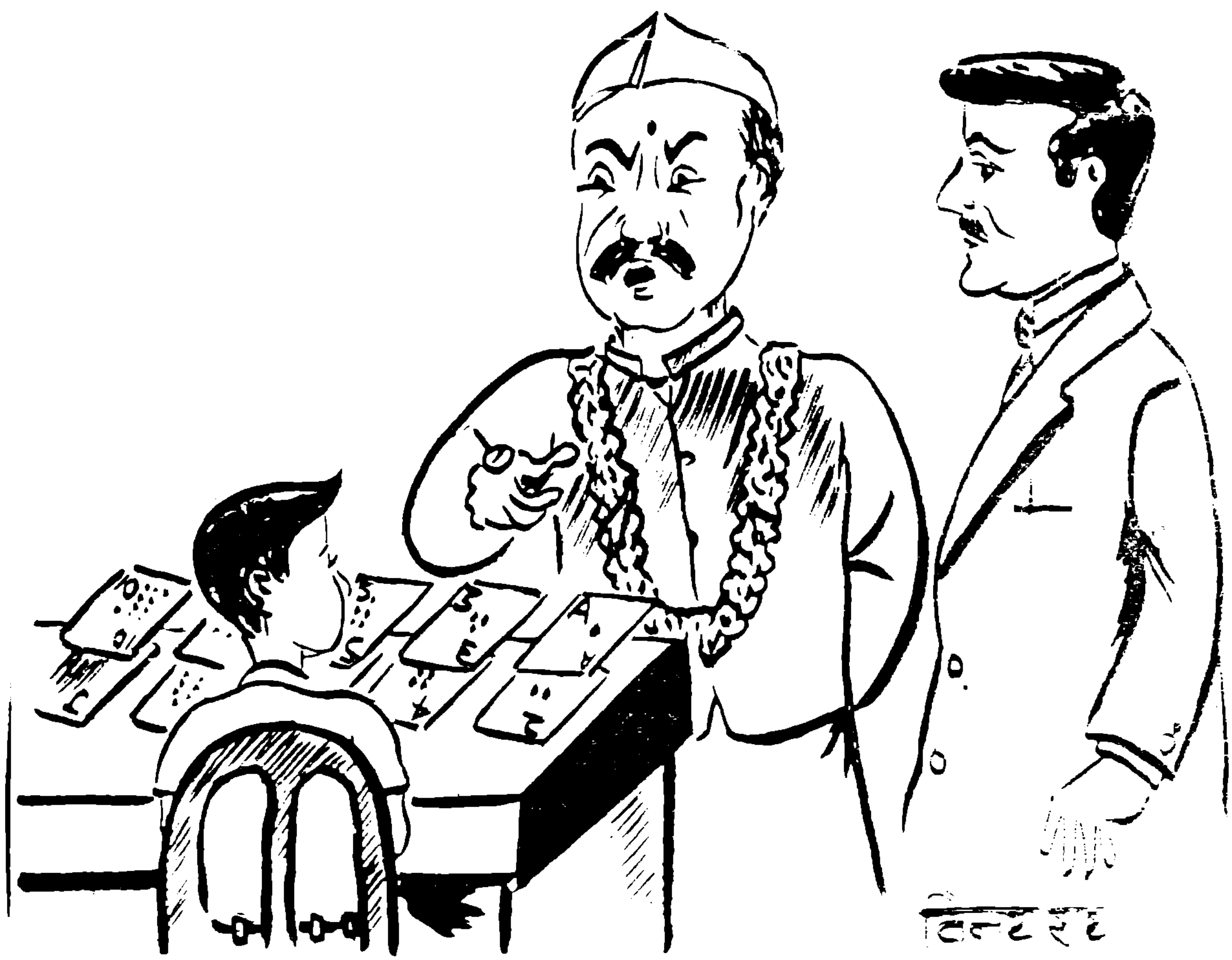
आज, कौशलपुर के हायर सेकेन्डरी विद्यालय की शामत आई थी। हफ्तों की तैयारी के बाद भी प्राचार्य जी के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं, विद्यार्थियों में सन्नाटा था। वे चुस्त और सजग थे।

अकेला अरविन्द ऐसा था जिसे, इस सारी दौड़-धूप और अफरा-तफरी से कोई जैसे मतलब ही न हो। वह कक्षा में पीछे बैठा, किसी और ही योजना में उलझा था, किसी गंभीर समस्या में डूबा था। वैसे भी वह हमेशा कक्षा में पीछे ही बैठा करता था। या तो वह गणित की समस्याएं सुलझाता या भौतिकी के प्रश्न हल करता।

निर्धारित समय पर मंत्री महोदय ने अरविन्द की कक्षा में प्रवेश किया। छात्रों की अनुशासनबद्ध कतारें उठ खड़ी हुई, पर अरविन्द बेखबर-सा बैठा ही रहा। मंत्रीजी यह कैसे सहते ? स्वागत में पहनाई कनेर के फूलों की माला ने पहले ही उनका मूड खराब कर दिया था। उन्होंने इशारे से प्राचार्यजी से कहा। प्राचार्यजी के पुकारने पर अरविन्द तनिक-सा उठकर, फिर बैठ गया। जैसे उसने कुछ देखा ही न हो।

''इस लड़के की यह हिमाकत !'' मंत्रीजी का गुस्सा उबलने लगा। वे स्वयं ही अरविन्द के डेस्क के पास पहुंचे और यह देखकर कि अरविन्द ने अपनी डेस्क पर ताश के पत्ते फैला रखे हैं, उनके क्रोध की जैसे सीमा ही न रही।

वे जैसे चीख ही पड़े ''तो...तो...तू...विद्यालय में ताश खेलने, कक्षा का और



छात्रों का अनुशासन बिगाड़ने आता है। प्राचार्य, इसे आज ही, अभी-अभी स्कूल से निकाल बाहर करो। हमारी ऐसी अवज्ञा, ओह... कैसा मगरूर छात्र है।''

''परन्तु श्रीमान् जी ...बात ऐसी है कि अरविन्द.....अरविन्द तो हमारे विद्यालय का .... ।''

प्राचार्यजी की आवाज़ न निकलती देखकर अरविन्द नम्रता से बोला- ''माननीय मंत्रीजी यदि मेरे खिलाफ आप कोई ऐसा प्रमाण पाएं तो अवश्य ही निकाल दें, पर मैं ताश नहीं खेल रहा हूं, पढ़ रहा हूं। शायद आपके लिए यह वक्त बरबाद करने वाला, पत्तों का खेल होगा.... पर मेरे लिए, यह ज्ञान-विज्ञान के भंडारों का नक्शा है.... इन मामूली से ताश के पत्तों से मुझे, गणित, धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल सभी का ज्ञान प्राप्त होता है।''

मंत्रीजी अब चकित थे । कुछ समझना-सोचना तो उनके बूते का था नहीं, सो डपटकर बोले यों ही बेसिर पैर की मत हांक लड़के, हर एक पत्ते की बात बताओ, वर्ना तो...।

अरविन्द ताश के पत्तों पर उसी तरह दृष्टि जमाए हुए गूढ़ मुस्कान से बोला– "जी..... आप नहीं मानते तो बताएं देता हूं, पर यह विद्या देखने वाली आखें..... आपके ....।"

"बस-बस बहुत हुआ, बताओ तुम, मंत्रीजी खीज कर बोले ।"

तो सुनों मंत्रीजी– "ताश के इन पत्तों में से जब मैं इक्के को देखता हूं तो इसमें मुझे आकाश का ध्रुवतारा नजर आता है, जो मुझे दृढ़ता, अपने कार्य में अडिगता और निश्चल प्रकाश देने की प्रेरणा देता है ।

जब मैं इस दुक्की को हाथ में लेता हूं तो इसमें मुझे माता पार्वती और पिता भोले शंकर के दर्शन होते हैं । भवानी-शंकर को देखकर मुझे सम्पूर्ण भौतिक जगत में प्रकृति और पदार्थ, शिव और शक्ति के सम्मिलन के रहस्य नजर आने लगतें हैं ।

इस तिक्की से, मंत्री महोदय, मुझे अपने आसपास फैले, उत्तम, मध्यम और अधम स्वभाव के मनुष्यों की समझ प्राप्त होती है । कभी-कभी मैं, इस तिक्की में, प्रकृति के तीन गुणों के ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन त्रिदेवों के दर्शन भी करता हूं ।

चौकी को देखते ही मंत्रीजी मुझे चारों वेदों का ध्यान आ   ा है और वेदमंत्र, सामवेद के स्वर, मेरे कानों में गूंजने लगते हैं ।

पंजी में तो मुझे पांच पांडवों के पराक्रम के दर्शन होते हैं । उन्हीं के सदृश्य, मुझे धर्मयुद्ध करने की, अन्याय से लड़ने की प्रेरणा प्राप्त होती है और महाभारत का पूरा इतिहास मेरे सामने खड़ा हो जाता है ।

माननीय, छक्की में, मैं अपने भारतीय वेदांत के षड्-दर्शनों के, सत्ती में आकाश मंडल में सदैव प्रकाशमान सप्तऋषियों के, अट्ठी में मानव शरीर की आठ सिद्धियों के और नैली में नव दुर्गाओं को देखता हूं ।

दहला देखकर मुझे दस महाविद्याओं का ज्ञान प्राप्त होता है ।"

मंत्रीजी अरविन्द को ताके जा रहे थे । उन्होंने सोचा, यहां तक तो एक से दस संख्याएं थीं सो बात चल गई, ठीक-ठाक जमाली, अब देखें गुलाम, बेगम, बादशाह

के बारे में यह बालक क्या कहता है.... वह बोले- ''और गुलाम, बेगम, बादशाह इनमें क्या दिखता है तुम्हें ? ये कौन-सा ज्ञान देते हैं आपको ?''

अरविन्द मुस्कराया, बोला, ''शिक्षाविद जी ! गुलाम में मैं बालकृष्ण के, बेगम में माता यशोदा के और बादशाह में मैं नंदबाबा के दर्शन करता हूं .... अब बच रहा है जोकर, तो जोकर को मैं श्रीमानजी जब देखता हूं तो उसमें ...उसमें मुझे आप नजर आते हैं ...।''

अरविन्द की बात पूरी होते-होते बहुत देर से दबाई छात्रों की हंसी फूट ही पड़ी। प्राध्यापक और प्राचार्यजी भी मुंह फेर कर, मुस्करा रहे थे। कृत्रिम खांसी में हंसी छुपा रहे थे।

मंत्रीजी हतप्रभ थे, उन्हें अच्छा-सबक मिल चुका था।

दीपावली की रात और जुआ

बच्चों ! दीपावली की रात को सारे भारत में तरह-तरह से जुआ खेला जाता है। इस रात जुए में जीतना शुभ शकुन माना जाता है। कहते हैं, जो दीपावली की रात जुए में जीतता है उसे वर्ष भर, हर कार्य में सफलता मिलती है।

कुछ घरों में दीपावली पर लक्ष्मी-पूजन के साथ कौड़ी की पूजा भी होती है। फिर, उसी कौड़ी से जुआ खेलते हैं।

दीपावली की रात को द्यूत-क्रीड़ा के प्रचलन की कहानी शिव-पार्वती से जुड़ी है। पुराणों में कथा आती है कि आज के दिन शंकर-पार्वती में निर्णायक जुआ हुआ था। उस जुए में भागीदार सभी पक्षों को इस रात पार्वती से पहले शाप मिले फिर वरदान। ये शाप-वरदान इस पासे के खेल के कलह कारक, दुखदाई और धूर्तता भरे पक्ष को प्रस्तुत करते हैं। आओ वह कहानी सुनें ....

तो कहानी है शंकरजी के घर की। शंकर-पार्वती, सारीपाट खेलने के शौकीन तो थे ही, पासों के खेल को लेकर आपस में खूब झगड़ते भी थे।

दीपावली से पूर्व जो सारीपाट का खेल हुआ उसमें भोले शंकर, पार्वती से अपना मृगचर्म, आभूषण, बाघाम्बर, सोटी, कुंडी, भांग की थैली यहां तक कि नंदी और लंगोटी तक हार गए। एक के बाद एक चीज, वे दांव पर लगाते गए और जब दांव पर लगाने को कुछ भी शेष न बचा, तो वे हारने की ग्लानि से भरे गंगातट पर जा बसे।

बाहर से आने पर घर में पिता महादेव को न पाकर कार्तिकेय दुखी मन गंगातट पर पहुंचे। सारी बात जान उन्होंने पिता महादेव से पासे की यह क्रीड़ा सीखी। अच्छी तरह सीख कर वे घर आकर पार्वती के साथ पासे खेले और पिता शंकर की सारी सम्पत्ति जीतकर उन्हें लौटा दी।

अब जुआ में हार जाने के कारण पार्वती सारे समय दुखी रहने लगी। गौरी के लाड़ले बेटे गणेश से यह सहा नहीं गया। उन्होंने मां पार्वती से जुआ खेलना सीखा और फिर वे अपने भाई कीर्तिकेय के साथ जुआ खेले। उन्होंने अपनी मां का हारा सब कुछ वापस जीत लिया।

जीता हुआ सब कुछ समेट जब वे कैलाश पहुंचे तो पार्वती ने कहा- ''बेटा गणेश ! पिता को क्यों नहीं लाए ?''

मां की खुशी सबसे बड़ी। मातृ भक्त गणेश जब शंकर को मनाकर लाने के लिए गए तो पता लगा, हार की लज्जा से वे गंगा तट छोड़ हरिद्वार चले गए हैं। बेचारे गणेश हरिद्वार के लिए चल दिए। यह खबर नारदजी को लगी। वे भला कब चाहने लगे कि शिव-पार्वती में मेल हो ?

अब क्या था, किसी तरह गणेशजी को रोकने की कोशिशें होने लगीं। उसमें विष्णु और रावण भी शामिल हो गए।

रावण बिल्ली बना, उसने गणेश वाहन चूहे को डराकर भगाने की कोशिश की, पर गणेश हरिद्वार पहुंच ही गए। पहुंचे तो देखा, शंकरजी के पास नारद और विष्णु दोनों ही विराज रहे हैं।

गणेश के बहुत कहने पर, शंकरजी इसी शर्त पर वापिस आए कि वे पार्वती के साथ, स्वयं, अकेले ही जुआ खेलेंगे और जीतकर ही घर में रहेंगे। शंकर और विष्णु की दुरभि-संधि हो गई थी। शंकरजी के कहने पर विष्णु खुद पासे बन गए थे। अब शंकर की जीत निश्चित थी।

जैसे ही कैलाश पहुंचे, पहुंचते ही शंकर ने जुए में जीतने पर घर रहने की शर्त रख दी।

पार्वती बोली– ''दांव पर क्या लगाओगे भोलेनाथ, है क्या तुम्हार पास ?''

तब नारदजी ने अपनी वीणा शंकरजी को दांव पर लगाने को दी और खेल शुरू हो गया।

लेकिन इस खेल में अब पासा तो थे मायाप्रिय, क्रीड़ाप्रिय विष्णु। वे बार-बार ढुलक जाते, पलट जाते। लिहाजा पार्वती दांव हारती चली गई।

इस जुए के खेल के दर्शक तो कई थे। पर रेफरी थे कार्तिकेय और गणेश। विष्णु की चाल गणेश की ही पकड़ में आई। वे यद्यपि दूसरी पार्टी के रेफरी भी थे तो भी, वे धीरे से, पार्वती के कान में फुसफुसाए- ''विष्णु छल रूप में पासा बने है, वे ही तुम्हें हरा रहे हैं मां।''

इतना जानना था कि पार्वती के क्रोध की सीमा नहीं रही। नारद और रावण ने, उन्हें बहुत समझाया कि विष्णु ने ऐसा केवल शंकरजी की मान रक्षा के लिए किया है, उनके मन से हार की लज्जा धोने के लिए, यह खेल खेला है, पर पार्वती किसी की कब सुनने वाली थी। उन्होंने क्रोध में भर सभी को, तड़ातड़ शाप दे डाले।

सबंसे पहले शंकरजी को शाप मिला- ''तुम्हें हमेशा सिर पर गंगा का बोझ ढोना पड़ेगा।''



नारदजी तो सबसे अधिक दोषी थे। पार्वती को उन पर बहुत गुस्सा था। इधर की उधर, उधर की इधर लगाकर, लोगों के घर में लड़ाई कराते हो। जाओ आज से तुम कहीं भी, घड़ी भर जमकर नहीं बैठ सकोगे। ताकि तुम्हें ये जालसाजियां करने को वक्त ही नहीं मिले।

यद्यपि दोनों ने शंकर के कहने से ही साठगांठ की, पर दुरभि संधि विष्णु और रावण की थी। पार्वती ने विष्णु को शाप दिया- ''जाओ, यही रावण तुम्हारा कट्टर शत्रु होगा।'' रावण को शाप मिला- ''ये विष्णु ही तुम्हारा वध करेंगे।''

अब बच रहे, पिता से सहानुभूति रखने वाले, कार्तिकेय। बेटा तो वे पार्वती के भी थे पर उन्हें भी पार्वती ने नहीं छोड़ा। उन्हें तो, अनोखा ही शाप मिला- ''जाओ, तुम जीवनभर कभी तरुण नहीं होवोगे, बच्चे ही बने रहोगे।''

पार्वती के ऐसे, हर एक को दनादन दिए शापों से, सभी सकते में आ गए। कैलाश पर्वत तक सन्न रह गया।

अब क्या किया जाए ? जगत्माता के शाप निष्फल तो जाने से रहे। इनका परिहार कैसे कराया जाए ?

सभी सोच में पड़ गए। नारदजी आखिर नारद ठहरे। उन्होंने दिखाने के लिए शंकरजी की कुछ नुक्ता-चीनी की घर-गृहस्थी में ध्यान न देने के लिए चेताया, पार्वती की प्रशंसा की। कुछ हंसी-विनोद के प्रसंग सुनाए। यों, वैसे भी, शाप दे देने के बाद पार्वती का क्रोध, कम तो हो ही गया था। अन्ततः गिरिजा प्रसन्न हो गई। उन्होंने नारदजी से वर मांगने को कहा।

नारदजी ने कहा- ''जगदम्बा ! यह तो ठीक है कि मैं कहीं टिक नहीं सकूंगा पर मुझे ऐसा वर दो कि मैं, देवताओं का ऋषि बनूं, समस्त देवगण मुझ पर प्रसन्न रहें। मैं आज्ञा में अनुरक्त रहूं।''

रावण ने कहा- ''माता ! मुझे शिवभक्ति का वरदान दें। साथ ही मैं वेदों का अप्रतिम व्याख्याता बनूं, ऐसी कृपा आप करें।''

विष्णु ने मांगा- 'हे जगत जननी ! यदि मुझे रावण को मारना है तो सिर्फ उतना ही क्यों ? आप मुझे यह वरदान दो कि सृष्टि में मेरा कोई भी कार्य छोटा हो या बड़ा, कभी अपूर्ण नहीं रहे।''

कार्तिकेय बोले- ''मां, यदि मुझे आप बच्चा ही बनाए रखना चाहती हैं तो ठीक है पर मुझे ऐसा वरदान भी दें कि मेरे मन में, विषय-वासना का उदय न हो।''

उन्हें शाप तो नहीं मिला था पर गणेश क्यों पीछे रहते ? उन्होंने सारे देवताओं में सर्वप्रथम पूजा का वर मांग लिया।

पार्वती ने सभी से कहा ''तथास्तु'', ऐसा ही होगा।

अन्त में शंकरजी ने कहा- ''पार्वती तुम सभी को वरदान दे रही हो तो मुझे भी तो दो न ...।''

पार्वती मुस्कुराई, बोली- ''मांगो, क्या मांगते हो ?''

भोले शंकर बोले– ''पार्वती, जुआ खेलना है तो बहुत बुरा, देखो हमारी गृहस्थी में इस सारीपाट के खेल ने कैसा दुखदाई खेल कर दिखाया है। फिर भी, मैं तुमसे, यही वरदान मांगता हूं कि कार्तिक की इस दीपावली की रात को, जो कोई भी जुआ खेले, जीते, वह वर्ष भर सफलता पाए, सुखी, सम्पन्न प्रसन्न रहे।''

पार्वती बोली- ''ऐसा ही होगा प्रभु, लेकिन आपने ऐसा वरदान मांगा क्यों है ?''

इस पर महा कालेश्वर शिव बोले- ''पार्वती, क्या तुम नहीं जानती कि दीपावली की रात्रि विद्या, तंत्र-मंत्र, कला-कौशल जगाने की रात है, सिद्ध करने की रात है। वो इसलिए कि यह सबसे अंधेरी रात होती है। इस सूचीभेद्य अंधकार को जो अपने प्रयासों से दूर करके सिद्धि पा लेता है उसे अन्य कोई भी अंधेरा पराजित करने की, शक्ति मिल जाती है, सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

आज वही मुहूर्त था, वही दीपावली की रात थी। इस बेला को कोई अपयश न मिले, इस लिए मैंने धूर्तविद्या की सिद्धि और एक रात के मनोरंजन के लिए यह वरदान तुमसे मांगा है।''

कहते हैं, तभी से दीपावली की रात को लोग जुआ अवश्य खेलते हैं।



प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय